International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 6, September-October 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

म्यांमार में लोकतांत्रिक संकट और भारतीय विदेश नीति

विशम्भर दयाल पाराशर

सहायक आचार्य- राजनीतिशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, धौलपुर, राजस्थान

सार

निश्चित रूप से वर्ष 2021 में म्यांमार, जनता के बीच बेहद लोकप्रिय एक लोकतांत्रिक आंदोलन की ओर बढ़ रहा था. म्यांमार की सेना अपने नागरिकों के बीच बिल्कुल भी पसंद नहीं की जाती है और विदेश में भी ये काफ़ी अलोकप्रिय है. इसकी बड़ी वजह यही है कि तातमाडॉ, म्यांमार की सत्ता पर अपने तानाशाही शिकंजे को छोड़ने को तैयार नहीं है. भले ही नियामक चिंताएं भारतीय विदेश नीति को संचालित नहीं करती हैं, पर म्यांमार भारत की लुक/एक्ट ईस्ट नीति और उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिए योजनाओं के लिहाज से अहम है। म्यांमार में लोकतांत्रिक सरकार के तख्तापलट के बाद उत्पन्न संघर्ष एक महत्त्वपूर्ण बिंदु के करीब पहुंच रहा है, क्योंकि सेना और उसकी प्रतिरोधी शक्तियां दोनों ने ही इस बीच अपनी ताकत बढ़ा ली हैं। एंथोनी डेविस ने 19 अक्टूबर 2021 को एशिया टाइम्स में इरावदी घाटी से लेकर सीमावर्ती इलाकों तक, पूरे देश में जन प्रतिरोध को कुचलने के लिए सेना के ऑपरेशन अनावराता (बर्मीज़ साम्राज्य के योद्धा संस्थापक के नाम पर) का एक विवरण जारी किया था। इस बीच, म्यांमार के चिन प्रांत के थंतलांग में सेना द्वारा शहर में की गई गोलाबारी के बाद जले हुए घरों की तस्वीरें म्यांमार-भारतीय सीमा पर नागरिकों के खिलाफ हिंसा की वृद्धि की गवाही देती हैं। इसने मिजोरम में शरणार्थियों के आंदोलन की एक नई लहर पैदा कर दी है। हालांकि, म्यांमार को लेकर भारतीय राष्ट्र-राज्य की स्थिति अभी तक निस्पंदित बनी हुई है, वह आसियान की पांच-सूत्रीय सहमति के पीछे छिपी हुई है, और इस तरह संघर्ष को होने दे रही है।.

How to cite this paper: Vishambhar Dayal Parashar "Democratic Crisis in Myanmar and Indian Foreign Policy" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-6, October 2022, pp.310-314, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd51863.pdf

IJTSRD51863

Copyright © 2022 by author(s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

यद्यपि म्यांमार सेना के ऑपरेशन अनावराता का उद्देश्य पूरे क्षेत्र पर अपना नियंत्रण करना प्रतीत होता है और सेना दशकों के आतंकवाद विरोधी अभियानों के अपने अनुभवों के बल पर जानती है कि ऐसा करना उसके लिए बहुत आसान है। इसलिए उसके इस ऑपरेशन का अधिक व्यावहारिक उद्देश्य लोगों में सेना का भय फैलाना हो सकता है। हालांकि, नेशनल यूनिटी गवर्नमेंट (एनयूजी) के नेतृत्व में लोकतांत्रिक प्रतिरोध, जिसने 7 सितंबर 2021 को लोगों के रक्षा युद्ध की घोषणा की, उसने सेना से लड़ने के लिए एथनिक आर्म्ड ऑर्गनाइजेशन (एफएओ) के साथ-साथ अब एक सेंट्रल कमांड एंड कोऑर्डिनेशन कमेटी (सी3सी) का भी गठन किया है। यह सेना के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष को संगठित करने और देश भर में कई अनुभवहीन पीपुल्स डिफेंस फोर्सेज (पीडीएफ) को नेतृत्व प्रदान करने की दिशा में एक बड़ा कदम है। संघर्ष को कम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय समुदायों की तरफ से पहल की सामान्य कमी का मतलब यह है कि सीमित बाहरी कारक (यदि कोई हो) तो वे ही मानव त्रासदी की अगली लहर को रोक सकते हैं। म्यांमार में जारी सेना की हिंसक कार्रवाई के मामले में भारत का दामन भी साफ नहीं हैं। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के एक प्रस्ताव पर मतदान करने से परहेज किया जिसमें म्यांमार पर गैर-बाध्यकारी हथियार प्रतिबंध लगाने की मांग की गई थी। भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (बीईएल) ने सरकार के तख्तापलट के बाद भी तटीय निगरानी में मदद करने वाले रडार घटकों को म्यांमार को भेजना जारी रखा है। इस तरह के दोहरे मानदंड दर्शाते हैं कि भारत सरकार म्यांमार में लोकतांत्रिक परिवर्तन के समर्थन का केवल दिखावा कर रही है और वास्तव में उसने मिन आंग हलिंग (एमएएच) के तहत सेना का ही पक्ष लिया है। [1,2]

भारतीय दूतावास के सैन्य अताशे ने मार्च में सशस्त्र सेना दिवस परेड में भाग लिया, जो संघर्ष में अब तक का सबसे खूनी महीना था। हालांकि यह महज संयोग हो सकता है और उसके द्वारा तख्तापलट का समर्थन करना नहीं हो सकता है, पर यह भारत के खराब कूटनीतिक व्यवहार का संकेत देता है। इसके अलावा, भारत आने वाले शरणार्थियों को शरण देने से इनकार करने के केंद्र सरकार के निर्देश और लंबे समय से चल रहे रोहिंग्या संकट के प्रति उसकी सामान्य उदासीनता ने इस मुद्दे पर भारत के नियामक रुख को नष्ट कर दिया है। इस तरह का रुख उन रिश्तेदारी संबंधों की भी अनदेखी करता है, जो सीमा के इस-उस पार निबाहे जाते हैं, खासकर भारत के मिजोरम और म्यांमार के चिन राज्य के बीच।

अब तक भारत सरकार की नीति आसियान की पांच सूत्री योजना की पिछली सीट पर बैठने और उसके पीछे खड़े रहने की रही है। आसियान ने हथियार प्रतिबंध पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्ताव के खिलाफ पैरवी की और यहां तक कि सेना को इसकी

बैठकों में भाग लेने की अनुमति दी। हालाँकि, हाल ही में इसमें एक बदलाव आया है, भले ही इसकी प्रासंगिकता बहुत कम है। एमएएच की बजाय म्यांमार से केवल एक 'गैर-राजनीतिक प्रतिनिधि' को अनुमति देने के आसियान के फैसले को सेना के लिए एक अपमान के रूप में देखा जाता है। यह आसियान दूत को आंग सान सू की से मिलने का अवसर न देने के एमएएच के फैसले का जवाब माना जा रहा है। हालांकि आसियान की पंच-सूत्रीय योजना के कमजोर होने और उसका म्यांमार में जो हो रहा है, उसके लिए सेना को जिम्मेदार न ठहराने के कारण वह योजना जांच के दायरे में आ गई है। विशेष दूत (ब्रुनेई के एरीवान युसूफ) की नियुक्ति में देरी, उसके बाद उनकी यात्राओं पर प्रतिबंध लगा दिया जाना और अब एक नई नियुक्ति की पहल की फुसफुसाहट उसके खोखलेपन को सामने लाती है। भारत ने म्यांमार के मुद्दे पर इस पहल के लिए लगातार अपना समर्थन दिया है। [3,4]

म्यांमार में लोगों की कई पीढ़ियों को सैन्य शासन और जातीय संघर्षों के चलते बहुत कुछ सहना-भुगतना पड़ा है। यहां तक कि थिन सीन और नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी के तहत लोकतांत्रिक संक्रमण की संक्षिप्त अवधि में भी, रोहिंग्या संकट काफी व्यापक हो गया और नई गलतियों ने पुरानी की जगह ले लीं। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप ने म्यांमार के विरुद्ध आर्थिक और व्यापारिक प्रतिबंध लगाने का पारंपरिक व्यवहार किया, जिसने यहां के जनजीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया था। थका देने वाला अनियंत्रित व्यापार, नशीले पदार्थों, मनुष्यों और वन्यजीवों की तस्करी और पुलिस-सेना से संघर्ष में तो आम जीवन की हानि में वृद्धि होना तय है। भले ही नियामक चिंताएं भारतीय विदेश नीति को संचालित नहीं करती हैं, पर म्यांमार भारत की लुक/एक्ट ईस्ट नीति और इसके उत्तर-पूर्वी राज्यों की योजनाओं के लिहाज से अहम है जबकि दिल्ली में निर्णय लेने वालों के लिए म्यांमार को चीनी चश्मे के बिना देखना चुनौतीपूर्ण होगा। यहां भारत के लिए चीन की तुलना में रणनीतिक उपायों को आजमाने और कूटनीतिक संबंधों में गहराई देने की अपनी एक हद है। इसी का प्रमाण है, अडानी समूह द्वारा हाल ही में म्यांमार में अपने निवेश समाप्त करने की घोषणा। इसके अलावा, आसियान की योजना के पीछे खड़े रहने से भारत को वह लक्ष्य भी हासिल नहीं होता है।

भारत को एनयूजी को एक हितधारक के रूप में मान्यता देनी चाहिए और इसके साथ सक्रिय रूप से जुड़ना चाहिए। एनयूजी और ईएओ के बीच बढ़ता अभिसरण दशकों पुराने विश्वास घाटे को पाटने और भविष्य के लिए एक एकीकृत राजनीतिक समुदाय बनाने का एक अवसर प्रदान करता है। यह एक ऐसा क्षण हो सकता है, जो पैंगलोंग शांति प्रक्रिया की भावना को व्यावहारिक आकार प्रदान करे। भारत को अभी के अभी म्यांमार की सेना को प्रौद्योगिकी और हथियारों की बिक्री पर रोक लगा देनी चाहिए। प्रतिभागियों को एक मेज पर लाने के लिए शर्तें तैयार की जा सकती हैं। इसके अलावा, जैसा कि म्यांमार को अंतरराष्ट्रीय राजनीति की उच्च प्राथमिक सूची से एक बार फिर हटा दिया गया है, तो भारत को आगे बढ़ कर वहां के लोगों की चिंताओं को दूर करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय उसके प्रति निरंतर जुड़ाव महसूस करे। हालांकि रणनीतिकार म्यांमार को अपनी नीतिगत उपेक्षा से खो सकते हैं, लेकिन यदि भारत इसी तरह की उदासीन और निष्क्रिय नीति का पालन करना जारी रखता है तो उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। [5,6]

विचार-विमर्श

भारत के विदेश सचिव हर्ष वी श्रृंगला और सेना प्रमुख जनरल एम एम नरवणे ने हाल ही में द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के लिए म्यांमार का दौरा किया. मीडिया रिपोर्टों के मुताबिक, इस यात्रा का फोकस रखाइन प्रांत की राजधानी सितवे में भारत की कनेक्टिविटी परियोजनाओं और बांग्लादेश में विस्थापित रोहिंग्या की स्थिति पर चर्चा करना था. लेकिन जिस मुद्दे की सभी देखकर भी अनदेखी कर रहे हैं वह है बीजिंग के साथ संबंध. सीमा के सवाल पर भारत चीन के बीच बढ़ते तनाव ने दूसरे देशों के साथ-साथ इन सीमावर्ती इलाक़ों में रहने वाले समुदायों की भूमिका को भी एकदम चर्चा में ला दिया है.

अगर 2017 के डोकलाम संकट के दौरान भूटान की दोस्ताना स्थिति भारत के लिए महत्वपूर्ण थी तो 2020 में पाकिस्तान और नेपाल के दुश्मनी भरे तेवर ने नई दिल्ली के सब्र का इम्तेहान लिया है. इसी तरह, भारत के तिब्बती बहुल वाली स्पेशल फ्रंटियर फ़ोर्स (SFF) के ऑपरेशंस का राजनीतिकरण किया जाना और युन्नान-आधारित यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ़ असम (ULFA) की बढ़ती सैन्य हमले की धमकियों पर बीजिंग की चुप्पी ने दोनों दिग्गजों के बीच एक उत्तेजनापूर्ण और नाकाम बातचीत में भूमिका निभाई. अभी भी, म्यांमार, जो कि एक तृतीय-पक्ष देश है जिसकी सीमा चीन और भारत से मिलती है– वलॉन्ग ट्राईजंक्शन जो कि बड़े पैमाने पर सैन्यीकृत व विवादित है और कचिन समुदाय के लोग, जो भारत, उत्तरी म्यांमार और चीन में जनसांख्यिकी रूप से बिखरे हुए हैं, को लेकर दोनों देशों ने चल रहे गतिरोध पर सुविचारित मौन साध रखा है. अगर भारत और चीन के बीच सैन्य शत्रुता पूर्ण रूप से उभरती है, तो ख़ासकर पूर्वी क्षेत्र में, म्यांमार कैसे प्रतिक्रिया करेगा, और इसी तरह उत्तरी म्यांमार में सशस्त्र संगठन, जैसे कचिन इंडिपेंडेंस ऑर्गेनाइज़ेशन (KIO), जिसका पास के इलाकों के कुछ हिस्सों पर नियंत्रण है, किस तरह प्रतिक्रिया करता है – इसका भारत पर असर पड़ेगा.[7,8]

केआईओ ऐसे हालात में भारत के लिए महत्वपूर्ण इंटेलिजेंस जुटा सकता है और भारत के तथाकथित 'तिब्बत कार्ड' को भी मज़बूती दे सकता है. इसी तरह अराकान आर्मी (AA) जो कि रखाइन प्रांत में तत्मादाव (म्यांमार के सशस्त्र बलों का आधिकारिक नाम) को चुनौती दे रहा है और ज़मीनी स्तर पर इतना असर रखता है कि कलादान एमएमटी परियोजना की सफल या विफल कर सकता है, भारतीय सुरक्षा अधिकारियों के लिए पहुंच मुहैया कराने में मदद कर सकता है. केआईओ ने 2009 के बाद से लाइज़ा में और उसके आसपास समर्थन व युद्ध का अनुभव देकर अराकाम आर्मी को बनाया.

चीनी सीमा के क़रीब लाइज़ा में अपना मुख्यालय होने के बावजूद, केआईओ ने नीतिगत स्वतंत्रता का प्रदर्शन किया है और बीजिंग से रणनीतिक दिशानिर्देश लेने से मना कर दिया है. फिर भी, हमेशा, और अभी भी कचिन भारत के साथ मजबूत संबंध बनाना चाहते हैं. लेकिन नई दिल्ली नेपिडॉ (म्यांमार की राजधानी) की नाराज़गी के डर से और, नाकाम संबंधों के

जटिल इतिहास के कारण, इस तरह के रिश्ते को मज़बूत करने से बचती रही है.[9]

रणनीतिक रूप से अपनी सुरक्षा और आर्थिक फ़ायदे के लिए चीन पर निर्भर, नेपिडॉ ने चीन-भारत की प्रतिद्वंद्विता से ख़ुद को अलग रखा है. चीन के ख़िलाफ जन असंतोष के बावजूद, सरकार को अपने उत्तरी पड़ोसी से अलगाव मुश्किल लगता है. आंग सान सू की ने हाल ही में चीन-म्यांमार आर्थिक गलियारे (CMEC) के तहत बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स को लेकर समझौता किया है. सीमा विवाद पर बर्मा (म्यांमार का तब का नाम) ने 1961 में बीजिंग के साथ एक सीमा संधि पर हस्ताक्षर किए थे, जिसमें चीन ने मैकमोहन लाइन के आधार पर 'मैप-मेकिंग' के 'वाटरशेड प्रिंसिपल' को स्वीकार किया था. लेकिन भारत के साथ तनाव बढ़ने पर बीजिंग ने इसी तरह की सहमति से इनकार कर दिया, और 1962 का सीमा युद्ध किया. अपने गुटनिरपेक्ष सिद्धांतों पर अमल करते हुए और कुछ हद तक रणनीतिक दूरदर्शिता के चलते, बर्मा ने वलॉन्ग ट्राईजंक्शन पर अपना दावा छोड़ दिया. वह दो बड़े पड़ोसियों के साथ एक महंगे सीमा विवाद में पक्षकार नहीं बनना चाहता था. 1967 के भारत-बर्मा सीमा समझौते ने इसे वैधानिक बना दिया. आज तक नेपिडॉ, चीन-भारत के ज़मीन के विवादों से सुविचारित दूरी बनाए हुए है और भारत व म्यांमार के बीच आतंकवाद-विरोधी सहयोग में सुधार के बावजूद इसके किसी भी पड़ोसी के समर्थन में आगे आने की संभावना नहीं है. लेकिन कचिन का मामला ऐसा नहीं है, जो ट्राईजंक्शन पर फैले हैं और उनके पास ज़मीन पर चीनी और भारतीय सेना और उनकी सीमा सुरक्षा व्यवस्था के साथ जुड़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं है.

नीतिगत स्तर पर, भारत केआईओ के साथ किसी तरह का रिश्ता रखने का विरोधी रहा है क्योंकि यह संगठन म्यांमार की सेना से लड़ रहा है. ऐसा कोई भी संबंध तत्मादाव के साथ भरोसा क़ायम करने के भारत के दशकों लंबे विदेश नीति के प्रयासों को जटिल बना देगा, और इसे म्यांमार के घरेलू संघर्ष में हस्तक्षेप के तौर पर देखा जा सकता है. 1980 के दशक के उत्तरार्ध में वास्तव में ऐसा ही हुआ था जब पूर्वोत्तर में उग्रवादी हिंसा चरम पर पहुंच जाने पर भारत ने केआईओ से संपर्क किया था.[10,11]

हालांकि, भारत के तत्मादाव-केंद्रित नीतिगत दृष्टिकोण के उलट, चीन ने सरकार के साथ-साथ म्यांमार के विभिन्न जातीय हथियारबंद संगठनों (EAO) दोनों के साथ संबंध बनाकर म्यांमार में अपना रणनीतिक प्रभाव बनाया. मेगा इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं के संयोजन में, म्यांमार के विद्रोही आंदोलनों में बीजिंग की दख़लअंदाज़ी ने इसे मुश्किलों से जूझ रही पैंगलोंग शांति प्रक्रिया में निरीक्षक की भूमिका दिला दी – जिसमें भारत को पर्यवेक्षक का दर्जा मिला है.

परिणाम

1964 में एक नाकाम कोशिश के बाद, केआईओ ने अप्रैल 1965 में वरिष्ठ नेताओं की एक टीम भेजी– सेकेंड ब्रिगेड के वाइस चेयरमैन ब्रिगेडियर ज़ाउ तू और चौखान दर्रे के जनरल सेक्रेटरी पुंग श्वी ज़ो सेंग को भारत से सैन्य और वित्तीय मदद मांगने के लिए भेजा. पश्चिमी मोर्चे पर पाकिस्तान के साथ युद्ध में उलझे होने के बावजूद, नागरिक एजेंसियों के समर्थन के साथ भारत की मिलिट्री इंटेलिजेंस ने एक महीने से अधिक समय तक केआईओ नेतृत्व से बात की और लंबी बैठकों की कई श्रृंखला आयोजित की.

लेकिन एक डी-क्लासिफ़ाइड टॉप-सिक्रेट भारतीय इंटेलिजेंस रिपोर्ट बताती है कि, "प्रस्तावकों को प्रोत्साहित नहीं किया गया." अक्टूबर 1965 में भारत ने दक्षिणी अरुणाचल प्रदेश के तिरप में एक केआईओ ऑपरेटिव को गिरफ़्तार कर लिया, जब वह नई दिल्ली में अमेरिकी सेना के अटॉर्नी से संपर्क करने की कोशिश कर रहा था, जिससे कि दक्षिण वियतनाम की तरह अमेरिकी समर्थन हासिल किया जा सके. इसके साथ ही, चीन उत्तरी कचिन प्रांत में एक समुदाय, रावांग से नज़दीकी बढ़ा रहा था, और पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLA) के सैनिक स्थानीय समुदायों के साथ अपने संबंधों को गहरा करने के लिए नियमित रूप से इस क्षेत्र का दौरा कर रहे थे.

पीएलए की कोशिशों से क़रीब से जुड़े रहे केआईओ के एक वरिष्ठ सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी, जिससे इस लेखक ने बात की है, के अनुसार हालांकि, कचिन चीन के साथ संबंध बनाने के लिए तैयार थे, लेकिन उनकी लोकतांत्रिक भारत के समर्थन में अधिक रुचि थी– विदेशी संरक्षक के तौर पर भारत उनकी पहली पसंद था. माओत्से तुंग के साथ एक समझौते ने उन्हें राजनीतिक अवसर के लिए सीमित जगह दी, जो कि वैचारिक शर्तों से भरा था. लेकिन भारत, पाकिस्तान के साथ अपने संघर्ष से परेशान था और बर्मा (म्यांमार का पुराना नाम) के सैन्य नेता जनरल नेन विन (जो बीजिंग की बेईमानी का शिकार हुए) से संबंध बनाने की कोशिश में केआईओ के साथ जुड़ने से इनकार कर दिया. पैसे और हथियारों के लिए उतावले केआईओ ने बीजिंग के इशारे पर 1966 में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ बर्मा के साथ एक उग्रवादी गठबंधन में शामिल हो गया. इसने भारत के नागा और मिज़ो विद्रोहियों के लिए कचिन क्षेत्र से होकर चीन तक पहुंचने में मदद की. बर्मा में 1988 में लोकतंत्र की मांग को लेकर आंदोलन फूट पड़ा, और पूर्वोत्तर भारत में अलगाववादी विद्रोहियों की हिंसा में तेज़ी ने नई दिल्ली को रणनीति पर पुनर्विचार के लिए मजबूर किया. 1968 में गठित भारत की विदेशों में काम करने वाली इंटेलिजेंस एजेंसी, रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (RAW) ने 1965 में केआईओ को इन्कार कर दिए जाने के नकारात्मक नतीजों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया. 1971 के बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के बाद भारतीय इंटेलिजेंस एजेंसी ने दक्षिण-पूर्व एशिया में अपने नेटवर्क का विस्तार किया और तत्कालीन बर्मी सैन्य इंटेलिजेंस की नज़र में आए बिना केआईओ नेताओं से गुप्त रूप से संबंध बनाना शुरू किया.[12]

पूर्वोत्तर में उल्फ़ा (ULFA) और नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैंड (इसाक-मुइवा), (NSCN-IM) द्वारा हिंसा में तेज़ी लाने और उनके द्वारा बर्मी इलाके का इस्तेमाल और बर्मा के हथियारबंद जातीय समूह (EAO) के साथ संबंध ने भारत की केआईओ में रुचि जगाई, जो म्यांमार में सभी EAO में सबसे मज़बूत है और संघर्षों में शामिल रहा है.

दिसंबर 1988 में बैंकॉक में RAW के चीफ़-ऑफ-स्टेशन बी बी नंदी केआईओ के करिश्माई चेयरमैन मारन ब्रांग सेंग से मिले और उनकी पहली नई दिल्ली यात्रा सुनिश्चित की. भारत में,

केआईओ प्रमुख शीर्ष इंटेलिजेंस, सैन्य और राजनीतिक हस्तियों से मिले, जिन्होंने उन्हें समर्थन का भरोसा जताया. 1990 में, केआईओ को नई दिल्ली में भारत सरकार के साथ कारगर सहयोग और संपर्क के लिए नई दिल्ली में रिप्रजेंटेटिव ऑफ़िस ऑफ कचिन अफ़ेयर्स (ROKA) खोलने की इजाज़त दी गई. नई दिल्ली ने सिर्फ़ छोटे हथियारों और पैसों से ही नहीं बल्कि 1990-91 में केआईओ कार्यकर्ताओं को राजनीतिक और राजनयिक प्रशिक्षण भी दिया.

इस सबके बीच, भारत उल्फ़ा और एनएससीएन-आईएम के खिलाफ सैन्य अभियान की योजना बना रहा था. इस मक़सद के लिए केआईओ से बदले में मांगा गया था कि वह भारत के ख़िलाफ नागा और असमी विद्रोहियों को समर्थन और शरण देने से मना कर दे. असर फ़ौरन दिखा. जुलाई और अक्टूबर 1990 के बीच अधिकांश उल्फ़ा और एनएससीएन-आईएम कैडर को कचिन के प्रभाव वाला इलाक़ा ख़ाली करना पड़ा. नवंबर 1990 में, भारत ने ऑपरेशन बजरंग लॉन्च किया, और भले ही इस ऑपरेशन के नतीजे मिले-जुले थे, केआईओ की प्रतिक्रिया ने भारत को इतना प्रभावित किया कि जनवरी 1991 में ब्रांग सेंग को फिर से नई दिल्ली आमंत्रित किया गया, इस बार ख़ुद भारतीय प्रधानमंत्री चंद्रशेखर से मुलाक़ात के लिए.

ब्रांग सेंग की आत्मकथा के अनुसार–जिसका कुछ हिस्सा इस लेखक को देखने को मिला – गणतंत्र दिवस समारोह के एक दिन बाद 27 जनवरी को चंद्रशेखर ने केआईओ चेयरमैन के साथ तीस मिनट की बैठक की. ज़्यादा हथियारों का वादा करने के अलावा चंद्रशेखर ने ब्रांग सेंग को बर्मा के ईओए गठबंधन-डेमोक्रेटिक एलायंस ऑफ बर्मा, जिसके भीतर केआईओ प्रभावशाली स्थिति में है, के लिए एक कार्यालय खोलने की अनुमति दी. केआईओ के साथ इस तरह रिश्ते गहरे बनाने का मक़सद था ऑपरेशन राइनो के लिए ज़मीन तैयार करना, जिसे सितंबर 1991 में अंजाम दिया गया.

इस मुक़ाम पर, नई दिल्ली के साथ केआईओ की बढ़ती दोस्ती को देखते हुए, बीजिंग ने अपनी जवाबी रणनीति बनाई. बीजिंग के निर्देश पर काम कर रहे एक चीनी हथियार डीलर ने केआईओ को हथियार सप्लाई करने का वादा किया, उसने ब्रांग सेंग से पैसे लिए और – ग़ायब हो गया. लगभग इसी समय, चीन के समर्थन के साथ बर्मी सैन्य इंटेलिजेंस, केआईओ ब्रिगेडों में से एक के भीतर एक दरार पैदा करने में कामयाब रहा और शान प्रांत में सक्रिय उसकी एक ब्रिगेड ने तत्मादाव के साथ संघर्ष विराम कर लिया. चीन की दग़ाबाज़ी से निराश केआईओ ने उन हथियारों का इस्तेमाल करने का फैसला किया, जो भारत ने गुप्त रूप से उसे मुहैया कराए थे और भारतीय सरहद के क़रीब तत्मादाव से अपनी कुछ पुरानी चौकियों को फिर से जीतने की कोशिश की. वह अंततः अपने मुख्यालय को चीन की सीमा के पास लाईज़ा में रखने के बजाय, भारतीय सरहद के पास स्थानांतरित करना चाहता था.

ब्रांग सेंग ने अपनी योजनाओं के बारे में रॉ को बताया और जून 1992 में ऑपरेशन पर आगे बढ़ा. लेकिन किसी तरह केआईओ के संचालन और समूह के लिए भारत के गुप्त समर्थन का ब्यौरा तत्मादाव को लीक हो गया. केआईओ लड़ाई हार गया, और आख़िरकार फरवरी 1994 में सरकार के साथ एक औपचारिक युद्धविराम समझौते पर हस्ताक्षर किए. अगस्त 1994 में एक स्ट्रोक के बाद ब्रांग सेंग का निधन हो गया.

निष्कर्ष

साल 2011 में जब केआईओ और तत्मादाव के बीच संघर्ष विराम टूट गया, तो केआईओ ने समर्थन के लिए एक बार फिर भारत से संपर्क किया. नई दिल्ली में हालांकि, भारतीय अधिकारी – न कि प्रधानमंत्री– केआईओ नेतृत्व से मिले, लेकिन उन्होंने सार्थक समर्थन से इनकार कर दिया. इसके तुरंत बाद, चीन ने कदम बढ़ाए और केआईओ को तत्मादाव के लिए गंभीर प्रतिरोध खड़ा करने में समर्थ बनाया, जबकि साथ ही नेपिडॉ से गुटों को बातचीत की मेज़ पर 'लाने' का वादा किया. विडंबना यह है कि जिन कारणों से पहली युद्ध विराम बार टूटा उनमें से एक था चीन द्वारा कचिन राज्य में मित्सोन डैम को बनाने की संभावना, जिसमें कचिन लोगों के आंतरिक विस्थापन का ख़तरा था.

म्यांमार का अनुभव रखने वाले एक रिटायर्ड भारतीय इंटेलिजेंस अधिकारी के अनुसार, कचिन भारत के "रणनीतिक सहयोगी" हैं, लेकिन "नई दिल्ली में कोई सुनता नहीं है. हालांकि, जो लोग जानते हैं, समझते हैं." केआईओ और भारत दोनों के लिए समस्या अपेक्षाओं की भिन्नता रही है. भारत उन्हें सिर्फ़ एक सामरिक सहयोगी के रूप में देखता है जो पूर्वोत्तर में विद्रोहियों का मुकाबला करने में संभावित रूप से मदद कर सकता है, लेकिन इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि नेपिडॉ के साथ संबंधों को नए सिरे से परिभाषित किया जाए.

हालांकि, केआईओ, 1989-91 के दौर में वापस लौटना चाहता है और नई दिल्ली के साथ एक व्यापक व मज़बूत रिश्ता रखना चाहता है, जो सुरक्षा को मुद्दों से आगे तक जाता है. आदर्श रूप से यह भारत के साथ ऑर्गेनिक आर्थिक संबंध विकसित करने के लिए भारतीय बाजार में कीमती पत्थर जेड (हरिताश्म) बेचना चाहता है, जो इसे अपने नियंत्रण वाले उत्तरी म्यांमार की खदानों से मिलता है. हालांकि, जेड की भारत में सीमित मांग है, जबकि चीन में जेड बेशकीमती है, जिसका इस्तेमाल सांस्कृतिक कारणों से और अन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता है, जिससे वहां बड़े पैमाने पर मांग पैदा होती है. जैसा कि इस भारतीय इंटेलिजेंस अधिकारी ने कहा, "कचिन हमसे बहुत कुछ चाहते हैं जेड के लिए बाज़ार, शिक्षा और हमें नहीं पता कि इन संबंधों का क्या करना है."

एक बार इस लेखक द्वारा एक सेवारत केआईओ अधिकारी से यह पूछे जाने पर कि अब जबकि पूर्वोत्तर में विद्रोहियों से भारत को बुनियादी रूप से ख़तरा नहीं है, केआईओ असल में भारत की क्या मदद कर सकता है, अधिकारी ने जवाब दिया था, "चीनी नहीं चाहते कि हम भारत से बात करें क्योंकि वे चिंतित हैं कि नई दिल्ली हमें तिब्बतियों से जोड़ देगी." तिब्बती-कचिन कनेक्शन- सरहद पर दो विद्रोही समुदायों – से भारत का संबंध स्थापित करना, व्यवहार में दूरगामी नतीजों वाला हो सकते हैं, और इसके फ़िलहाल भारत के सुरक्षा एजेंडे में शामिल होने की संभावना नहीं है. लेकिन अगर यह नेपिडॉ के साथ संबंध जटिल बनाए बिना हासिल कर लिया जाता है – जो कि नामुमकिन नहीं है– तो यह सच में बीजिंग की भारत और म्यांमार के साथ ज़बरदस्ती की रणनीति में नया मोड़ ला सकती है.

भारत को दोनों देशों (भारत और म्याँमार) के लोगों के पारस्परिक विकास को सुनिश्चित करने लिये म्याँमार की वर्तमान सत्ता के साथ अपने संबंधों को बनाए रखना चाहिये, साथ ही यह भी आवश्यक है कि भारत, म्याँमार के मौजूदा प्रचलित गतिरोध को समाप्त करने में सहायता करने के लिये संवैधानिकता और संघवाद से संबंधित अपने अनुभव साझा करे, जिससे इस समस्या को जल्द-से-जल्द हल किया जा सके।[13]

संदर्भ

[1] भारत और म्यांमार के बीच विदेश कार्यालय परामर्श

[2] भारत और म्यांमार ने सीमा सहयोग पर समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया :

[3] भारत के प्रधान मंत्री की म्यांमार की राजकीय यात्रा पर भारत और म्यांमार द्वारा संयुक्त वक्तव्य

[4] बस ईस्ट पालिसी: इंफाल – मंडाले राइड का लुत्फ उठाने के लिए तैयार हो जाइए।

[5] बदलता म्यांमार: उस भाग्यशाली मुलाकात के दो वर्ष बाद

[6] भारतीय बैंको ने म्यांमार में कदम रखा

[7] Lt. Gen. Sir Arthur P. Phayre (1967). History of Burma (2 संस्करण). London: Sunil Gupta. पृ॰ 237.

[8] Maung Htin Aung (1967). A History of Burma. New York and London: Cambridge University Press. पपृ॰ 214–215.

[9] Thant Myint-U (2006). The River of Lost Footsteps--Histories of Burma. Farrar, Straus and Giroux. पृ॰ 113. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-374-16342-6, 0-374-16342-1 |isbn= के मान की जाँच करें: invalid character (मदद).

[10] Anthony Webster (1998). Gentlemen Capitalists: British Imperialism in South East Asia, 1770-1890. I.B.Tauris. पपृ॰ 142–145. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 1860641717, 9781860641718 |isbn= के मान की जाँच करें: invalid character (मदद).

[11] Thant Myint-U (2006). The River of Lost Footsteps--Histories of Burma. Farrar, Straus and Giroux. पपृ॰ 125–127. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-374-16342-6, 0-374-16342-1 |isbn= के मान की जाँच करें: invalid character (मदद).

[12] Michael Symes (1795). An Account of an Embassy to the Kingdom of Ava (PDF). मूल (PDF) से 28 अप्रैल 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 26 फ़रवरी 2011.

[13] Dorothy Woodman (1962). The Making of Burma (1 संस्करण). London: The Cresset Press. पृ॰ 60.